IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मुक्तिबोध का मार्क्सवादी दृष्टिकोण

शोध निर्देशक
प्रो. गुंजन
बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय,
बालूगंज, आगरा

शोधार्थी
रजनी पारस
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
डॉ. बी. आर. आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

बैकुंठी देवी कन्या महाविद्यालय, बालूगंज, आगरा

शोध सार-मुक्तिबोध वर्ग-संघर्ष, जन क्रान्ति, सामाजिक-सांस्कृतिक पुन: निर्माण तथा मानव की वृहत्तर संभावनाओं में निष्ठा रखने वाले ऐसे समीक्षक हैं, जिन्होंने साहित्य में व्यक्तिवादी मूल्यों के खण्डन के साथ ही सामाजिक तथा लोकमंगलकारी मूल्यों की प्रतिष्ठा के प्रति निरंतर सचेष्ट दृष्टि रखी है। कलाकार को सौन्दर्य भावों की अभिव्यक्ति तक सीमित करने का प्रयास विश्व के कलावादी आरंभ से ही करते आए हैं। यह सिद्धान्त मुक्तिबोध की दृष्टि में मानव विरोधी तथा जन विरोध है। इसलिए मुक्तिबोध जीवनानुभूति तथा सौन्दर्यानुभूति में पार्थक्य स्थापित करने वाले इस सिद्धान्त को एक खतरनाक सिद्धान्त और पूँजीवादी साजिश मानते हैं।

बीज शब्द:- वर्ग-संघर्ष, जन-क्रान्ति, सामाजिक-सांस्कृतिक, लोकमगंलवादी।

मालवा के पठारों में जन्मा एक ऐसा व्यक्तित्व जिसने अपने जीवन में अनेकों संघर्ष करने के बावजूद भी किसी के सामने झुकना नहीं सीखा। ऐसा ही व्यक्तित्व है गजानन माधव मुक्तिबोध का जिनका सम्पूर्ण जीवन ही संघर्ष पूर्ण रहा। मध्यप्रदेश के श्योपुर, जिला मुरैना में जन्में और राजनांद गाँव के कालेज में एक अध्यापक के रूप में नियुक्त, मुक्तिबोध जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े आलोचक भी। उन्होंने ऐसी अनेकों आलोचनाएँ लिखी जिसने सौन्दर्यशास्त्र की एक अलग ही परिभाषा प्रस्तुत की। उनकी कोई भी रचना उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हो सकी। केवल 46 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो गयी। उन्होंने जो साहित्य हमें दिया वह उन्हें एक प्रतिभाशाली साहित्यकार प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। उन्होंने जो समीक्षा की उसकी ओर लोगों का ध्यान उनकी मृत्यु के बाद ही गया। उनकी रचनाओं का प्रकाशन भी उनके जीवन में नहीं हुआ।

इसी यथार्थ पर टिप्पणी करते हुए शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा है कि "एकाएक क्यों सन् 64 के मध्य में गजानन माधव मुक्तिबोध विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो उठे ? क्यों 'धर्मयुग' ज्ञानोदय, 'लहर', 'नवभारत टाइम्स',- प्राय: सभी साप्ताहिक, मासिक और दैनिक उनका परिचय पाठकों को देने लगे और दिल्ली की साहित्यिक, हिन्दी दुनिया में एक नयी हलचल सी आ गई ?

इसलिए कि गजानन माधव मुक्तिबोध एकाएक हिन्दी संसार की एक घटना बन गये। कुछ ऐसी घटना जिसकी ओर से आँख मूँद लेना असंभव था। उनकी एकनिष्ठ तपस्या और संघर्ष, उनकी अटूट सच्चाई, उनका पूरा जीवन, सभी एक साथ हमारी भावना के केन्द्रीय मंच पर सामने आ गए। और हमने अब उनके कवि और विचारक को एक नयी आश्चर्य-दृष्टि से देखा।"[1]

उन्होंने केवल सैद्धान्तिक ही नहीं व्यावहारिक समीक्षा भी लिखी। दोनों प्रकार की समीक्षाएँ ही उन्होंने दी। नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध में अधिकांश निबंध सैद्धान्तिक विषयों पर भी है। जैसे- 'काव्य की रचना प्रक्रिया', 'सौन्दर्य प्रतीति और सामाजिक दृष्टि', 'नवीन समीक्षा का आधार', 'समीक्षा की समस्याएँ', 'साहित्य और जिज्ञासा' आदि। व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से शमशेर मेरी दृष्टि में, 'सुमित्रानंदन पंत' एक विश्लेषण काफी महत्वपूर्ण है। किन्तु उनकी व्यावहारिक समीक्षा की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण रचना कामायनी : एक पुनर्विचार है।

मुक्तिबोध ने छायावादी कविता के प्रति सकारात्मक रूख अपनाया और उसकी प्रगतिशील भूमिका का समर्थन किया। उनकी आलोचना, लेखक और रचना के प्रति गहरी आत्माभिव्यक्ति के कारण एक विश्वसनीय आलोचना है। 'कामायनी : एक पुर्नविचार' कृति और कृतिकार के माध्यम से अपनी सभ्यता की व्यापक समीक्षा है। छायावाद के प्रति सकारात्मक दृष्टि के कारण ही उन्होंने प्रगतिशील भूमिका का समर्थन किया। उनकी मार्क्सवादी दृष्टि से की गई कामायनी की समीक्षा अति महत्वपूर्ण है। 'कामायनी' की समीक्षा करते हुए उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि जीवन यथार्थ से उत्पन्न समस्याओं का समाधान जो प्रसाद ने प्रस्तुत किया है वह वायवीय और अव्यवहारिक है। 'कामायनी : एक पुनर्विचार' के आरंभ में ही उन्होंने अपना दृष्टिकोण सामने रखते हुए कहा है कि "आलोचक का यह धर्म है कि कामायनी में उपस्थित जीवन-समस्या की, उस आवयविक रूप से संलग्न परिवेश-परिस्थिति की तथा इन दोनों के संबंध में कवि की तथा उस जीवन-समस्या के कवि कृत निदान की समीक्षा करे।"[2]

मुक्तिबोध अपनी मार्क्सवादी आलोचनात्मक दृष्टि का परिचय देते हुए प्रसाद में वैज्ञानिक इतिहास-दृष्टि की अपेक्षा करते हैं। उन्होंने लिखा है कि "प्रसाद के पास ऐतिहासिक बुद्धि थी, पर कोई वैज्ञानिक इतिहास दृष्टि न थी। वैदिक कथानक उनके लिए एक विशाल फैन्टेसी का काम करता है।"[3] ज्यादा से ज्यादा प्रसाद जी के सम्बध में यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि उनका दर्शन एक उदार पूंजीवादी व्यक्तिवादी दर्शन है। जो यदि एक मुँह से वर्ग विषमता की निंदा करते हैं तो दूसरे मुँह से वर्गातीत, समाजातीत, व्यक्तिमूलक चेतना के आधार पर समाज के वास्तविक द्वन्दों का वायवीय तथा काल्पनिक प्रत्याहार करते हुए अभेदानुभूति के आनंद का ही संदेश देते हैं। निश्चय ही समाजातीत, वर्गातीत, व्यक्तिमूलक आनंदवादी अद्वैतवादी अपने अन्तिम निष्कर्षों में उसी विषमतापूर्वक समाज की स्थिति में कुछ सतही ऊपरी परिवर्तन करके संतुष्ट है।[4]

उनकी आलोचनात्मक दृष्टि में संघर्ष का सबसे ज्यादा भाग नयी कविता के व्यक्तिवादी-कलावादी अंतर्मुखी साहित्य सिद्धांतों से मुठभेड़ को लेकर रहा है। वे जड़ीभूत सौन्दर्याभिरुचि के सिद्धांतों पर प्रहार करते हुए, अपने निबन्ध, काव्य एक सांस्कृतिक प्रक्रिया में कहते हैं कि "काव्य में सांस्कृतिक परंपरा का समाहार होता है और उसके मूल्य वैयक्तिक न होकर सामाजिक होते हैं। वे इसी अर्थ में प्रयोगवाद तथा नयी कविता को भी सांस्कृतिक परंपरा का अंग मानते हैं। मुक्तिबोध के अनुसार मन के भीतर अंतर्तत्व को कला वस्तु बनने के लिए मन की आँखों के सामने क्रमश: तरंगायित, उद्घाटित, आलोकित और अभिव्यक्ति के लिए आतुर होना आवश्यक है। इसी क्रम में मुक्तिबोध कला के तीन क्षणों की व्याख्या प्रस्तुत करके कला की रचना-प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं। वे आगे कहते हैं कि, "तरंगायित होने का संबंध आवेग है, उद्घाटित होने की अवस्था का संबंध बोध-पक्ष से है-ऐसे बोधपक्ष से जो ज्ञानात्मक आधार पर स्थित होकर व्यक्ति- बद्धता की स्थिति से अनुभवकर्ता को ऊँचा कर देता है। वस्तुत: यहीं से रूप-पक्ष भी आरंभ हो जाता है। मनस्त्व यहाँ रूप लेकर प्रस्तुत होता है।"[5]

"कला का द्वितीय क्षण तब से आरम्भ होता है। जब तक मनस्तत्व अन्य समशील मनस्तत्वों अथवा अनुभवों से जुड़कर अधिक संश्लेषित और कल्पनालोकित हो जाता है। इस स्थिति में उसमें एक व्यापक अर्थ आ जाता है। वह अधिक से अधिक सामान्य हो जाता है। व्यक्तिबद्धता की स्थिति समाप्त हो जाती है और अनुभवकर्ता इस सामान्यीकृत मनस्तत्व को शब्द –स्वर-रंग में अभिव्यक्त करने के लिए आतुर हो जाता है। यहाँ से कला का तीसरा क्षण आरम्भ होता है। जब मनस्तत्व बाह्योन्मुखी होकर अपने अनुकूल रूप धारण करके मूर्त होता है। तब प्रथम और द्वितीय क्षणों से प्राप्त रूप पक्ष बहुत कुछ बदल जाता है। परिणामत: पूर्ण की हुई कविता, पूर्ण की हुई कलाकृति, अपनी पूर्वगत तत्वानुभूति की वास्तविकता से बहुत-कुछ भिन्न हो जाती है।"[6]

मुक्तिबोध अपनी इस स्थापना को निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, कि "जिस प्रकार हम जीवन में बाह्य जीवन-जगत को अपने आभ्यंतर में संशोधित संपादित कर आत्मसात करते जाते हैं। उसी तरह हम शब्दों द्वारा आत्मसात कृत को बाह्यगत करते जाते हैं, चाहे वे शब्द साधारण बातचीत में प्रकट हो, भाषणों में लेखों में प्रकट हो अथवा छन्द-लय में उद्घाटित हो।"[7]

मुक्तिबोध का मानना है कि छायावादियों और प्रगतिवादियों की तरह ही नयी कविता के पास अपनी कोई दार्शनिक विचारधारा नहीं है। नयी कविता को बौद्धिकता की कविता कहते हुए, वे उसकी एक समय सीमा भी तय कर देते हैं। रचना के प्रति अपनी समाजशास्त्रीय दृष्टि का परिचय देते हुए कहते हैं कि "हम जिस समाज, संस्कृति, परंपरा, युग और ऐतिहासिक आवर्त में रहते हैं उन सबका प्रयास हमारे हृदय का संस्कार करता है। हमारी आत्मा में जो कुछ है वह समाज प्रदत्त है – चाहे वह निष्कलुष अनिंध सौन्दर्य का आदर्श ही क्यों न हो। हमारा सामाजिक व्यक्तित्व हमारी आत्मा है। आत्मा का सारा सार तत्व प्राकृत रूप से सामाजिक है। व्यक्ति और समाज का विरोध बौद्धिक विक्षेप है। इस विरोध का कोई अस्तित्व नहीं।"[8]

मुक्तिबोध ने अपने समीक्षा सिद्धान्तों में कलाकार की व्यक्तिगत ईमानदारी को सबसे अधिक महत्व दिया है। वे कहते हैं कि "यदि लेखक आज ईमानदार है, तो उसे अपने प्रति और अपने युग के प्रति अधिक उत्तरदायी होना होगा।"[9] उसे अधिक साहस और हिम्मत से काम लेना होगा। अपनी सौन्दर्याभिरुचि के सेन्सर्स के वशीभूत होना ठीक नहीं है। अनुभव वृद्धि के साथ-साथ सौन्दर्याभिरुचि का विस्तार और पुन: संस्कार होना आवश्यक है। इसलिए वे कलाकार की ईमानदारी में 'आनेस्टी तथा सिंसियरिटी' दोनों को महत्वपूर्ण मानते हैं। उन्होंने रचना प्रक्रिया का विवेचन भाववादी चिन्तन पद्धति से अलग होकर किया है। इसलिए वे रचना प्रक्रिया के मानसिक व्यापार तक ही सीमित न होकर उसके वस्तुपरक आंकलन तक पहुँचते हैं। और रचना को क्षण-विशेष की उपज न मानकर सुदीर्घ मन: प्रक्रिया का परिणाम मानते हैं। इस तरह मुक्तिबोध की आलोचना में रचनाकार की ईमानदारी को जितना महत्व दिया गया है। उतना ही आलोचक को भी। मुक्तिबोध को सभ्यता समीक्षक के रूप में चित्रित करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने कहा है कि "मुक्तिबोध सभ्यता समीक्षा के लिए सत्-चित् आनंद के बदले सत्-चित्, वेदना का बोध जरूरी समझते हैं, जिससे पैदा होती है सत्ताओं द्वारा सताए हुए लोगों के प्रति गहरी संवदेनशीलता, जो मुक्तिधर्मी आलोचना की शक्ति का स्रोत है, और उसकी सामाजिकता की एक जरूरी शर्त भी। सभ्यता समीक्षा रचना और आलोचना के बीच समानधर्मिता स्वीकार करती है। वह आलोचना से रचना के साथ चलने की माँग करती है। उसके पीछे-2 नहीं। इसलिए वह आलोचना को रचना की सीमाओं से सावधान और मुक्त करने की स्वतंत्रता भी देती है।"[10]

मुक्तिबोध ज्ञान का सम्बन्ध बाह्य जगत से मानते हैं जबकि संवेदना का व्यक्ति के अन्तर्जगत से। उन्होंने रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए नई कविता के सन्दर्भ में एक चर्चित शब्द 'ज्ञानात्मक संवेदना' का प्रयोग किया है। ज्ञानात्मक संवेदना का तात्पर्य वह संवेदना जो ज्ञान से परिपूर्ण हो। ज्ञानात्मक संवेदना की स्थिति में रचनाकार स्व से ऊपर संवेदना की स्थिति में रचनाकार एवं से ऊपर उठ जाता है। उन्होंने कहा है कि "अपने से परे जाने, अपने से ऊपर उठने, दूसरों से अपने को मिलाने, विशिष्ट से सामान्य पर पहुँचने की यह जो ज्ञानात्मक संवेदना की दशा है, ज्ञानात्मक अनुभवों, की दशा है, वह सबमें होती है। इस तरह 'ज्ञानात्मक संवेदना' और संवेदनात्मक को एकमेक करके ही लेखक जीवन विवेक विकसित करता है। उनके अनुसार लेखक अपनी मूल्य भावना के अनुसार आभ्यांतर भावों को प्रस्तुत करता है और उसके अंत:करण में एक मूल्य भावना होती है जो उसे किन्हीं विशेष भावों को प्रकट करने के लिए तैयार करती रहती है। अन्य शब्दों में लेखक अपना एक एस्केटिक तैयार कर लेता है। इस तरह मुक्तिबोध ने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र को हिन्दी में एक नए ढंग से प्रस्तुत किया है।

निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि फिलहाल, मार्क्सवादी समीक्षकों में मुक्तिबोध की पहचान किंचित विवादास्पद रही है । कुछ लोगों का मानना है कि भाववादी चिंतन के संस्कार उनमें अन्त तक बने रहे । दरअसल मुक्तिबोध आत्मालोचन करते हुए अपने से लड़ते हैं और आत्मसंघर्ष करते हैं । इसे कुछ लोगों के लोगों ने उनके भीतर के अंतर्विरोध के रूप में रेखांकित करने की कोशिश की है । इस सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी सामने आता है कि उन्होंने प्रगतिवादी समीक्षा की कमजोरियों को भी बड़ी बेबाकी से 'समीक्षा की समस्याएँ' नामक निबन्ध में रेखांकित किया है ।

संदर्भ :

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेडा है। (भूमिका), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 26वाँ संस्करण, 2021,पृष्ठ-11
2. जैन, नेमीचन्द, मुक्तिबोध समग्र, खण्ड-5, राजमकल प्रकाशन, 2023, पृष्ठ-211.
3. वही, पृष्ठ-218.
4. वही, पृष्ठ-230
5. वही, खण्ड-6, पृष्ठ-141.
6. वही, पृष्ठ-141-142.
7. वही, पृष्ठ-142.
8. वही, पृष्ठ-228.
9. वही, पृष्ठ-240.
10. उद्धृत दस्ताजेव, -15, जिलाई –सितम्बर-2016, पृष्ठ-8.